



Sanvahak (संवाहक)

A Peer Reviewed, Refereed, Multidisciplinary (All Discipline/Subjects), Multilingual (All Languages) & Quarterly Research journal

ISSN : 3108-1347 (Online)

Vol.-2; Issue-2 (April-June) 2026

Page No.- 86-91

©2026 Sanvahak

DOI ; 10.71037/sanvahak.v2i2.13

<https://sanvahak.gyanvividha.com>

Author's:

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़.

Corresponding Author :

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़.

भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकनीति : स्वरूप, आधार एवं समकालीन प्रासंगिकता

सारांश : भारतीय ज्ञान परंपरा अनुभव एवं बौद्धिकता के अद्भुत समन्वय के साथ मानवीय सभ्यता के उषस् काल से अविच्छिन्न रूप से सतत प्रवाहित है। यह सतत प्रवाह वेद, उपनिषद्, दर्शन, धर्मशास्त्र, महाकाव्य, पुराण, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद जैसे प्रबुद्ध साहित्य से सिंचित रहा है। इस परंपरा में ज्ञान को जीवन से अलग नहीं समझा गया बल्कि इसे मनुष्य, समाज और राज्य से जोड़कर देखा गया। यही कारण है कि शासन और समाज-व्यवस्था से जुड़े प्रश्न भी इस ज्ञान-चर्चा का भाग रहे हैं। 'नीति' शब्द 'नी' धातु से बना है, जिसका आशय है - मार्ग दिखाना या सही दिशा में ले जाना। इसलिए नीति का अर्थ है वह सिद्धांत या तरीका जो व्यक्ति, समाज या राज्य को सही मार्ग पर ले जाएं। भारतीय दृष्टि में 'लोकनीति' से तत्पर्य केवल आज की शासकीय नीति जैसा नहीं है, बल्कि इसमें लोगों की भलाई, न्याय, सामाजिक जिम्मेदारी और सबके कल्याण का भाव भी सम्मिलित है। आज की सार्वजनिक नीति में आमतौर पर समस्या को पहचानना, विकल्प बनाना, फैसला लेना, संसाधन बांटना, लागू करना और नतीजों को जांचना - ये सब चरण आते हैं। जब इसकी तुलना भारतीय विचारों से की जाती है तो 'लोकसंग्रह', 'प्रजासुख', 'धर्म', 'वार्ता' और 'सर्वभूतहित' जैसी अवधारणाएँ बहुत कम की दिखाई देती हैं। यह अध्ययन कुछ चुने हुए संस्कृत ग्रंथों के मूल भाव को समझकर और उसे आज की नीति-समस्याओं से जोड़कर किया गया है। इसमें प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में निहित लोकहित, उत्तरदायित्व, समझदारी, न्याय और लोककल्याण जैसे विचारों को आज के लोकतांत्रिक ढांचे में के अनुसार तुलना करके उनकी प्रासंगिकता का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द : भारतीय ज्ञान परंपरा, लोकनीति, नीति, लोकसंग्रह, प्रजाकल्याण, कौटिल्य, दण्डनीति, सुशासन, सार्वजनिक नीति इत्यादि।

1. प्रस्तावना : भारतीय लोकनीतिक चिंतन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण

आधार 'लोकसंग्रह' की अवधारणा है। भगवद्गीता में कहा गया है-

“कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥”¹

यहां कार्य केवल अपने हित के लिए नहीं, बल्कि समाज के हित को ध्यान में रखकर करना चाहिए। आज की भाषा में इसे जनहित और सार्वजनिक मूल्य से जोड़ा जा सकता है। किसी भी नीति को केवल इस दृष्टि से नहीं देखना चाहिए कि वह प्रशासनिक तौर पर कितनी कारगर है बल्कि यह भी देखना चाहिए कि उससे समाज के अलग-अलग वर्गों की जीवन में वास्तव में कितना सुधार आता है। इसी कारण से सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, रोजगार और सबको साथ लेकर चलने वाली नीतियों को परखने की एक कसौटी के रूप में लोकसंग्रह को देखा जा सकता है। भगवद्गीता नेतृत्व के सामाजिक प्रभाव को स्पष्ट करते हुए कहती है-

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥”²

जो श्रेष्ठ व्यक्ति करता है बाकी लोग उसी का अनुसरण करते हैं। आज के शासन में यह बात नैतिक नेतृत्व और आदर्श के प्रभाव से जुड़ती है। भ्रष्टाचार रोकने, टैक्स भरने, पर्यावरण की जिम्मेदारी, सफाई और डिजिटल व्यवहार जैसे मामलों में लोग केवल कानून से नहीं बल्कि नेता कितना भरोसेमंद है, इससे भी प्रभावित होते हैं। इसलिए केवल नीति के कागज़ों में अच्छी बातें लिख देना काफी नहीं है बल्कि नेतृत्व के व्यवहार में भी पारदर्शिता, निष्पक्षता और जवाबदेही होनी चाहिए।

भारतीय लोकनीतिक चिंतन में कौटिलीय अर्थशास्त्र अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत है। कौटिल्य का प्रसिद्ध सूत्र है-

“प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।

नात्मप्रियं प्रियं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं प्रियम्॥”³

राजा का सुख प्रजा के सुख में है और राजा का हित प्रजा के हित में है। राजा को अपनी पसंद नहीं बल्कि प्रजा की पसंद देखनी चाहिए। यह विचार आज के नागरिक-केंद्रित शासन से मिलता-जुलता है। लेकिन आज के लोकतंत्र और पुराने राजतंत्र को एक जैसा मान लेना ठीक नहीं होगा क्योंकि आज सत्ता संविधान, कानून, चुनी हुई संस्थाओं और नागरिक अधिकारों से बंधी होती है। इसलिए कौटिल्य के इस सूत्र का इस्तेमाल संस्थाओं की तुलना के लिए नहीं बल्कि यह समझने के लिए करना चाहिए कि शासन का सही उद्देश्य जनहित होना चाहिए।

कौटिल्य कहते हैं-

“विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।

अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः॥”⁴

यहाँ ज्ञान, अनुशासन और सबकी भलाई - इन तीनों को अच्छे नेतृत्व की पहचान बताया गया है। आज के प्रशासन में इसे व्यावसायिक दक्षता, क्षमता बढ़ाना, नैतिक नेतृत्व और परिणामों पर आधारित शासन से जोड़ा जा सकता है।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में शासन चलाने के लिए चार तरह के ज्ञान या विद्याएं बताई हैं-

“आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।”⁵

आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति - ये चार विद्याएं हैं। आइए इन्हें एक-एक करके समझते हैं।

पहली विद्या: आन्वीक्षिकी : आन्वीक्षिकी का मतलब है सोच-विचार करने, तर्क लगाने और गहराई से जांच-पड़ताल करने की कला। यह वह ज्ञान है जो किसी भी बात को केवल मान लेने की बजाय उसकी सच्चाई परखने में मदद करता है। आज की भाषा में इसे शोध, आंकड़े जुटाना, विश्लेषण करना और किसी नीति का असर मापना - इन

सबसे जोड़ा जा सकता है। जैसे कोई सरकारी योजना लागू करने से पहले यह देखना कि उसका असली फायदा किसे और कितना होगा, यही आन्वीक्षिकी की आज की भूमिका है।

दूसरी विद्या: वार्ता : वार्ता का अर्थ है खेती-किसानी, पशुपालन और व्यापार से जुड़ी गतिविधियां - यानी वह सब कुछ जिससे लोगों की रोज़ी-रोटी चलती है और देश की अर्थव्यवस्था मजबूत होती है। आज के समय में इसे कृषि नीति, रोजगार, बाजार-व्यवस्था और आर्थिक नीति से जोड़ा जा सकता है। किसानों की मदद करने वाली योजनाएं, व्यापार को बढ़ावा देने वाले नियम, या रोजगार पैदा करने वाली नीतियां - ये सब आज वार्ता के ही आधुनिक रूप कहे जा सकते हैं।

तीसरी विद्या: दण्डनीति : दण्डनीति का संबंध शासन चलाने और कानून-व्यवस्था बनाए रखने से है। इसका उद्देश्य है समाज में अनुशासन और सुरक्षा बनाए रखना। आज इसे कानून का राज, पुलिस-प्रशासन, न्याय-व्यवस्था और सार्वजनिक सुरक्षा से जोड़ा जा सकता है। किसी भी समाज में कानून का सही तरीके से लागू होना और व्यवस्था बनाए रखना दण्डनीति का ही आज का स्वरूप है।

चौथी विद्या: त्रयी : त्रयी का मूल अर्थ तीन वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) के ज्ञान से जुड़ा है, जो व्यक्ति और समाज को नैतिक मूल्य और कर्तव्यबोध सिखाते थे। आज के संदर्भ में इसे सामाजिक मूल्य, नैतिकता, जिम्मेदारी और वैधता से जोड़ा जा सकता है। यानी कोई भी नीति केवल कानूनी तौर पर सही होना काफी नहीं, उसे नैतिक और सामाजिक रूप से भी स्वीकार्य होना चाहिए।

भारतीय नीति-विमर्श के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन करने पर 'लोकसंग्रह', 'प्रजासुख', 'धर्म', 'आन्वीक्षिकी', 'वार्ता' और 'सर्वभूतहित' जैसी अवधारणाएँ महत्वपूर्ण वैचारिक संसाधन के रूप में सामने आती हैं। यहाँ एक बात समझनी बहुत जरूरी है - यह तुलना ऐसे नहीं करनी चाहिए जैसे कि प्राचीन काल की ये चार विद्याएँ और आज की नीति-व्यवस्था बिल्कुल एक जैसी हैं। असल में दोनों के बीच सीधी ऐतिहासिक समानता नहीं मानी जा सकती। बल्कि इसे एक विचारशील तुलना के तौर पर देखना चाहिए, जो हमें पुराने ज्ञान से कुछ सीख लेकर आज की नीति को बेहतर ढंग से समझने में मदद करती है। यानी यह केवल एक वैचारिक पुल है, न कि यह दावा कि प्राचीन व्यवस्था आज की व्यवस्था जैसी ही थी।

लोकनीति की सफलता न्यायपूर्ण संस्थाओं पर निर्भर करती है। मनुस्मृति में कहा गया है-

“धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥”⁶

जो धर्म को नष्ट करता है, धर्म उसे नष्ट कर देता है, और जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। इसलिए धर्म को कभी नष्ट नहीं करना चाहिए, ऐसा न हो कि नष्ट हुआ धर्म ही हमें नष्ट कर दे।

किसी भी लोकनीति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उस समाज में न्याय देने वाली संस्थाएं कितनी निष्पक्ष और मजबूत हैं। अगर न्याय-व्यवस्था कमजोर या पक्षपाती हो, तो चाहे नीति कितनी भी अच्छी क्यों न हो, वह ठीक से काम नहीं कर पाएगी।

यहाँ 'धर्म' का मतलब किसी एक पूजा-पद्धति या मज़हब से नहीं है, बल्कि न्याय, कर्तव्य और सही आचरण के व्यापक अर्थ में लेना चाहिए। यह श्लोक न्याय की प्रक्रिया से जुड़े हिस्से में आता है और यह बताता है कि धर्म यानी न्याय-व्यवस्था की रक्षा करना, समाज की पूरी व्यवस्था की रक्षा करने जैसा है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र है-

“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम् ॥”⁷

तुम सब मिलकर चलो, आपस में बातचीत करो, तुम्हारे मन एक-दूसरे को समझें। तुम्हारी सलाह एक हो,

तुम्हारी सभा एक हो, तुम्हारे मन एक जैसे हों और तुम्हारे विचारों में सामञ्जस्य हो। यह मंत्र बहुत गहरी बात कहता है - कि साथ मिलकर आगे बढ़ना, आपस में खुलकर बात करना और एक साझा लक्ष्य के लिए काम करना कितना जरूरी है। इसमें सामूहिकता, संवाद और एकता की भावना साफ झलकती है। इस तरह देखा जाए तो वैदिक काल की वह सोच आज की सहभागी शासन-व्यवस्था के बीच एक सार्थक वैचारिक कड़ी बनती है। दोनों ही इस बात पर जोर देते हैं कि फैसले अकेले नहीं, बल्कि मिलकर, बातचीत करके और सबकी राय को साथ लेकर किए जाने चाहिए। यही असली मायने में सामूहिक और सहभागी शासन की नींव है।

“सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥”

सब लोग सुखी रहें, सब लोग स्वस्थ और निरोगी रहें, सब लोगों का भला हो, और कोई भी दुखी न रहे। यह श्लोक अपने आप में बहुत ही व्यापक और सुंदर भावना व्यक्त करता है - कि दुनिया के हर इंसान की भलाई हो, कोई भी पीछे न छूटे और कोई भी दुख न झेले।

भारतीय परंपरा में 'सर्वभूतहित' यानी सभी प्राणियों की भलाई की सोच और आज के समावेशी विकास की सोच - दोनों में मूल्यों के स्तर पर कुछ समानता जरूर नजर आती है। दोनों ही यह चाहते हैं कि कोई भी पीछे न छूटे और सबका भला हो। लेकिन इसके बावजूद इन दोनों को पूरी तरह एक जैसा मान लेना सही नहीं होगा। पुराने समय की सोच और आज की आधुनिक नीति-व्यवस्था के बनने का तरीका, उनके पीछे की प्रक्रिया और उन्हें लागू करने का ढांचा - ये सब अलग-अलग हैं। इसलिए इस समानता को केवल एक वैचारिक और मूल्यगत जुड़ाव के तौर पर देखना चाहिये।

2. प्रकृति और मनुष्य का संबंध : भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति, मनुष्य और समाज के आपसी संबंधों पर बहुत विचार किया गया है। अथर्ववेद के पृथ्वी-सूक्त में पृथ्वी और मनुष्य के संबंध की बहुत व्यापक कल्पना मिलती है। आज के समय में इस विचार को जलवायु-सहनशीलता, जल-संरक्षण, जैव-विविधता, सतत कृषि तथा आने वाली पीढ़ियों के साथ न्याय जैसे विषयों से जोड़कर समझा जा सकता है।

यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण है कि 'लोकहित' का अर्थ केवल आज के मनुष्य-समाज तक सीमित न रहे, बल्कि इसमें आने वाली पीढ़ियों का हित भी सम्मिलित होना चाहिए। उदाहरण के लिए, जल-नीति बनाते समय भूजल की कमी, खेती-किसानी, घरेलू जल-आवश्यकता, औद्योगिक उपयोग तथा भविष्य की आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाना आवश्यक है।

नीति आयोग की वर्तमान सतत विकास व्यवस्था आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय पक्षों को एक साथ जोड़कर देखती है तथा प्रगति को विभिन्न संकेतकों और निगरानी-प्रणालियों के माध्यम से मापती है। इस प्रकार भारतीय लोकसंग्रह की सोच और आज की सततता संबंधी विचारधारा के बीच एक नैतिक संवाद स्थापित हो सकता है।

3. सूचना और निगरानी की व्यवस्था : कौटिल्य के प्रशासनिक विचारों में सूचना एकत्र करना, अधिकारियों पर निगरानी रखना तथा सही निर्णय लेने की क्षमता को बहुत महत्व दिया गया है। आज के राज्य में इसकी तुलना प्रशासनिक आँकड़ों, लेखा-परीक्षण, जोखिम-मूल्यांकन, डिजिटल निगरानी-व्यवस्था तथा पूर्व-चेतावनी प्रणालियों से की जा सकती है। परंतु आज के लोकतंत्र में सूचना-आधारित शासन के साथ-साथ निजता, आँकड़ा-सुरक्षा, नागरिक स्वतंत्रता, सुगमता तथा भेदभाव-रहित व्यवहार जैसी सीमाएँ भी अनिवार्य हैं। इसलिए प्राचीन निगरानी-पद्धति को आज के शासन में वैसे का वैसा लागू करने के स्थान पर, सूचना की प्रशासनिक उपयोगिता और नागरिक अधिकारों के बीच संतुलन बनाना आवश्यक है।

4. सीमाएँ और सावधानियाँ : भारतीय लोकनीति को आज प्रासंगिक बनाने का अर्थ प्राचीन व्यवस्था को पुनः स्थापित करना नहीं है। प्राचीन राजतंत्र, दण्ड-व्यवस्था एवं ऐतिहासिक सामाजिक व्यवस्थाओं को आज के लोकतंत्र, न्याय-प्रणाली एवं संविधान का विकल्प नहीं माना जा सकता। हम प्राचीन भारतीय लोकतांत्रिक मूल्यों को वर्तमान लोककल्याणकारी राज्य के उन्नयन के लिए एक आदर्श के रूप में मान सकते हैं एवं उस प्राचीन व्यवस्था के उत्कृष्ट लोकतांत्रिक एवं संवैधानिक मूल्यों को अपना सकते हैं।

5. निष्कर्ष : भारतीय ज्ञान परंपरा में लोकनीति का मूल स्वरूप पाँच मूल्यों पर आधारित है - लोकहित, न्याय, उत्तरदायित्व, नैतिक नेतृत्व तथा व्यापक कल्याण। भगवद्गीता में वर्णित लोकसंग्रह की अवधारणा, कौटिलीय अर्थशास्त्र में वर्णित प्रजासुख का सिद्धान्त, आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति नामक विद्याएँ, वैदिक परंपरा में संवाद और सामूहिकता की भावना, तथा धर्म एवं न्याय की अवधारणाएँ - ये सब आज की सार्वजनिक नीति के लिए महत्वपूर्ण वैचारिक साधन प्रस्तुत करती हैं।

इन प्राचीन अवधारणाओं की आज की प्रासंगिकता मुख्यतः पाँच क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। पहला क्षेत्र है नागरिक-केन्द्रित शासन, जिसका अर्थ है कि शासन का केन्द्र-बिन्दु सामान्य नागरिक होना चाहिए, अर्थात् हर नीति और व्यवस्था के मूल में आम जनता का हित सबसे ऊपर रखा जाना चाहिए। दूसरा क्षेत्र है नैतिक तथा उत्तरदायी नेतृत्व, जिसका तात्पर्य यह है कि नेतृत्व का व्यवहार पारदर्शी और जिम्मेदारीपूर्ण होना चाहिए, ताकि जनता का विश्वास बना रहे और शासन की विश्वसनीयता मजबूत हो। तीसरा क्षेत्र है प्रमाण-आधारित नीति, जिसका अभिप्राय है कि नीति-निर्माण तथ्यों और आँकड़ों पर आधारित होना चाहिए, न कि केवल अनुमान या पुरानी मान्यताओं पर। चौथा क्षेत्र है सहभागी तथा समावेशी शासन, अर्थात् समाज के सभी वर्गों को शासन की प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिससे हर व्यक्ति की आवाज़ सुनी जा सके और कोई भी वर्ग शासन से अलग-थलग न रहे। पाँचवाँ और अंतिम क्षेत्र है सतत तथा अन्तर-पीढ़ीय विकास, जिसका अर्थ है कि विकास ऐसा होना चाहिए जो न केवल आज की आवश्यकताओं को पूरा करे, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के हित की भी रक्षा करे।

“ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥”⁸

हम सब एक हैं। पूरी सृष्टि एक है। इसलिए भारतीय ज्ञान परम्परा में संसार को ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ (पृथ्वी एक परिवार के रूप में) के रूप में जाना जाता है। सनातन परम्परा की मान्यता के अनुसार पृथ्वी एक परिवार है और धरती हमारी माता है इसलिए इसका संरक्षण करना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। प्राकृतिक संसाधनों का हास और तेजी से लुप्त हो रही प्रजातियाँ पर्यावरण के प्रति मनुष्य की संवेदनशीलता का परिचायक है। प्रकृति और मानव विकास के बीच संतुलन बना रहे।

अतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भारतीय ज्ञान परंपरा को आज की सार्वजनिक नीति में सीधे तैयार समाधान के रूप में नहीं, अपितु वैचारिक, नैतिक तथा सभ्यतागत साधन के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। भारतीय ज्ञान, संवैधानिक मूल्यों, अनुभवजन्य प्रमाण, आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा नागरिक सहभागिता - इन सबके समन्वय से लोकनीति अधिक उत्तरदायी, समावेशी तथा दीर्घकालिक लोककल्याण की दिशा में उन्मुख बन सकती है।

संदर्भ सूची :

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 3.20
2. श्रीमद्भगवद्गीता, 3.21
3. अर्थशास्त्रम्, 1.19.34
4. अर्थशास्त्रम्, 1.5.17

5. अर्थशास्त्रम्, 1.2.1
6. मनुस्मृति, 8.15
7. ऋग्वेद, 10.191.2-3
8. बृहदारण्यक उपनिषद् 5.1.1

6. संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2005
2. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992
3. गोयन्दका, हरिकृष्णदास; (अनु.), श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्यसहिता; गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण 2011
4. कौशिक, पंकजा घई, संस्कृत में राजनीतिक चिंतन, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2020
5. गैरोला, वाचस्पति (अनुवादक), कौटिल्य अर्थशास्त्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1984
6. गैरोला, वाचस्पति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 1989
7. चारण, दिनेश कुमार (व्याख्याकार), कौटिल्य अर्थशास्त्र, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2020
8. चारण, दिनेश कुमार, कौटिल्य के अर्थशास्त्र का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2020
9. पाण्डेय, विमल चन्द्र, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास) भाग-1(, सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, प्रयागराज, 1998
10. शास्त्री, उदयवीर (अनुवादक), कौटिल्य अर्थशास्त्र (हिंदी अनुवाद), मेहर चंद लक्ष्मण दास, दिल्ली, 1961
11. शास्त्री, जी पी. तिवारी, श्यामलेश कुमार (टीकाकार), अर्थशास्त्र, हिंदी टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2017

•